दलित साहित्य - सामाजिक संघर्ष का दौर

डा. सजीव. के, असिस्टन्ट प्रोफसर, एन.एस.एस. कालेज, ओट्टप्पालम।

राष्ट्र की कल्पना केवल शासक और इर्द-गिर्द रहनेवाले लोगों तक सीमित नहीं है। गरीब, पिछडे एवं वंचित अंतिम आदमी तक राष्ट्र की नसें फैली हैं। भारत की मुक्ति हेतु संपन्न संघर्षों में सक्रिय सहयोग देकर संविधान निर्माण में अनूठी भूमिका निभायी थी अम्बेदकर ने, जिन्हें दलितों का मसीहा माना जाता है। गाँधीजी ने भी अन्त्योदय एवं सार्वजन समता का सन्देश ही दिया था। लेकिन आज़ादी के बाद भी शोषकों की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आया। ''नई बोतिल में पुराना मद्य'' परोसनेवाले शोषकों पर दलितों का आक्रोश आजकल तेज हो रहा है। उनका मुख्य हथियार है दलित साहित्य। दलित साहित्य की आलोचनात्मक प्रस्तुति द्वारा दलितों के संघर्ष की प्रासंगिकता और उनके प्रति प्रकट मानसिकता में परिवर्तन के लिए समाज को प्रेरित करना ही इस शोध लेख का उद्देश्य है।

कुंजी शब्द: दलित, अस्मिता, अस्पृश्यता, आत्मसम्मान, मानसिकता

दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत हैं महात्मा ज्योतिबा फूले और बाबा भीमराव अंबेडकर साहब।

महात्मा फूले ने 1863 सत्यशोधक समाज की स्थापना की, पुरोहितवाद का विरोध किया। उनका नारा था ईश्वर निर्गुण, निराकार, भेद-भाव न माननेवाला, ईश्वर और भक्त के बीच पुजारी या मध्यस्थाकों न माननेवाला है। उनके अनुसार पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड और जप-तप अज्ञानमूलक है। शिक्षा ही जीवन में उन्नति का मार्ग है। छुआछूत की भावना मिटाने के लिए फूले जी अपने कुएँ अछूत के लिए खुली, पाठशाला खुली, अपनी पत्नी सावित्री फूले को अध्यापिका बनाई। उन्होंने बताया-

''विद्या बिना मति नहीं, मति बिना गति नहीं
गति बिना वित्त नहीं, वित्त बिना शूद्र पीछे रहे।
इतना अनर्थ बिना विद्या के सहते रहे।''

इसी परंपरा में, 1920 में बाबा साहेब अम्बेडकर ने 'मुखनायक' पत्रिका शुरु की। 1927 में 'बहिष्कृत भारत' पत्रिका आरंभ करते हुए उन्होंने महाड पर पानी के लिए सत्याग्रह किया। नैसर्गिक सम्पत्ति पर अधिकार जताया और मनुस्मृति को जला दिया। 1930 नासिक में कालाराम

मंदिर में प्रवेश किया। उन्होंने बताया - सीखो, संगठित हो और संघर्ष करो। सौ साल बकरी बनकर नहीं एक दिन शेर बनकर रहो। इन प्रयत्नों से अम्बेडकर समाज के सर्वोपरि दलितों के मसीहा बन गए। और 1970 में दलित पैंथर आंदोलन शुरु किया।

सन् 1960 के आसपास महाराष्ट्र में दलित साहित्य का निर्माण होने लगा। मराठी दलित साहित्य का विकास एक तरह के सांस्कृतिक विस्फोट के रूप में हुआ था। दलित कवि, कहानीकार, उपन्यासकार अपनी अलग पहचान देने लगे। अनुभव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका साहित्य पारंपरिक साहित्य की मुख्यधारा से भिन्न था। शरणकुमार लिम्बाले के अनुसार - ''दलित साहित्य अपना केंद्रबिन्दु मनुष्य को मानता है। बाबा साहब के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ, उनकी वेदना को वाणी मिली, क्योंकि उस मूल समाज को बाबा साहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की वह वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं, वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।''[1] दलित साहित्य दलित भावनाओं की अनुगूँज है। इसमें क्रांति और बदलाव का आक्रोश है। मंगलेश डबराल की राय में - ''सशक्त साहित्य या तो संकट में पैदा होता है या दमन के माहौल में। दलित साहित्य दमन के माहौल में पैदा हुआ है।''[2] कमल भारती के अनुसार दलित साहित्य का मतलब उससे है जिससे दलित होने, स्वयं अपनी पीडा को रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला कला केलिए नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।'' मराठी लेखक बाबुराव बाबुल कहते हैं - ''मनुष्य की मुक्ति को स्वीकारनेवाला, मनुष्यों को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठ का प्रबल विरोध करने का साहित्य ही दलित साहित्य है। सोहनपाल सुमनाक्षर की राय में - ''दलित साहित्य दया, याचना या करुणा का साहित्य नहीं है, क्रांति, विद्रोह, समता, समरसता का साहित्य है। वेदना, नकार, विद्रोह और आक्रोश दलित साहित्य की चेतना है।

सामाजिक विकास से वंचित जनविभाग में संचरित मोहभंग का आक्रोश ही दलित साहित्य का प्राण है। शोषण के शिकार हुए लोगों के प्रति सहानुभूति से वे संतुष्ट नहीं, वे स्वयं संघर्ष का पुरोधा बनकर आगे आए। दया पवार की पंक्तियाँ है -

''हे महान देश,

कब तक चलेगा, तेरा यह भेदभाव।''[3]

कालीचरण सनेही छन्दबद्ध रचना में कहा है - आज़ादी के बाद भी दलित वर्गों के प्रति शासक नज़रबंद रहे। भू-सुधार और गरीब कल्याण योजनाएँ कागज़ों में सीमित रहीं। 1951 में विनोबा भावे द्वारा संपन्न भूदान यज्ञ और गाँधीजी के प्रयत्नों के बावजूद भी दलित वर्ग मौलिक अधिकारों से वंचित रहे। बिहार में बिरसा मुण्डा,[4] बंगाल के बिन्स-सन्धाल वर्गों[5] और केरल के कुरुचिर जातिवालों द्वारा प्रस्तुत अंग्रेज़ विरोधी आन्दोलन का मुख्य कारण मौलिक अधिकारों का निषेध और शोषण ही था। लेकिन आज़ादी के बाद भी दुर्भाग्य एवं उपेक्षा के शिकार होने पर कालीचरण सनेही ने छन्दबद्ध शैली में कहा कि सुलभ नहीं हमको यहाँ दो गज ज़मीन, आज़ादी सबको मिली, कैसे करे यकीन।

गाँधीजी द्वारा जाति प्रथा के विरुद्ध आह्वान एवं कार्यक्रमों के बाद भी स्वतंत्र भारत जातिवाद की रंगभूमि रही। ओमप्रकाश वाल्मीकि का आक्रोश दलित हृदयरूपी ज्वालामुखी की दहकती लाना है -

''स्वीकार्य नहीं मुझे जाना
मृत्यु के बाद, तुम्हारे स्वर्ग में
वहाँ भी तुम पहचानोगे
मेरी जाति से।''[6]

जाति-धर्म-भाषा-वेश-प्रदेश के बंधन को भूलकर हमने आज़ादी के लिए जो संघर्ष किया, वह सफल तो हो गया, लेकिन संघर्षकारी लोग सत्ता की गद्दी पर बैठने पर निरीह, दुर्बल, वनवासी एवं दलितों को भूल गये। जिस सीढी के सहारे हम आज़ादी के मंजिल पहुँचे, उसी सीढ़ी को शासकों ने पैरों से पटक दिया। शासक सुविधाओं के मंजिल पर अपने चाटुकार एवं इर्द गिर्दवालों के साथ आज़ादी का आनंद लूटते रहे, लेकिन दलित-शोषित- आदिवासी लोग जैसे-की-तैसे दुखी ही रह गए। गाँधीजी ने भी देखा था-जातिवाद धर्मव्यवस्था का वरदान नहीं, उससे जान-बूझकर पैदा की गई विकृति या शोषण का परिणाम है।[7]

दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन की दुख-दुविधाओं को क्रंदन रूप नहीं, आक्रोश से ही मुखरित किया है। वे औदार्य नहीं चाहते, अस्तित्व का संघर्ष, चरित्र की सच्चाई, अथक परिश्रम, जन्मभूमि के प्रति निष्ठा निजी संस्कृति का स्वर दलित साहित्य में मुखरित है।

भारतीय समाज का सबसे भारी कलंक है - छुआछूत एवं अस्पृश्यता। इस ब्रह्माण्ड के सारे के सारे जीवों को परमेश्वर की सृष्टि माननेवाली भारतीय संस्कृति की स्वार्थ प्रेरित व्याख्या एवं शोषण ही इसके कारण है। निम्न जातिवाली शबरी का अतिथ्य ग्रहण करने और दलितों में दलित मल्लाह के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार के लिए तैयार हुए श्री रामचंद्र को माननेवाले ब्राह्मण[8] वर्गों ने अपनी श्रेष्ठता दिखाने और शोषण को माध्यम बनाकर समृद्ध-विलासमय जीवन बिताने के लिए इस दुव्र्यवस्था का अनुशीलन अनिवार्य माना।

दामोदर मोरे की कविता में पेड और नागिन का संवाद है -

पेड - ''तुमसे जहरीला कौन?

नागिन बोली - 'अस्पृश्यता
मैं एक को डसती हूँ,
पर अस्पृश्यता हज़ारों को डसती है।''

''आदमी आदमियों के बीच भेदभाव की दीवार
कौन और क्यों खडा कर रहा है?
जातिवाद के आतंक का डरावना डायनासोर
गलियों-गलियों में क्यों घूम रहा है ...?
लोकतांत्रिक मूल्यों की महकती बगिया को
हे संविधान शिल्पी ...। अब मैं कैसे बचाऊँ? [9]

दलित कवि मलखान सिंह लिखते हैं-

''सुनो ब्राह्मण
तुम्हारे जन्म के साथ ही हमारी गुलामी शुरु होती है,
इसका अंत भी तुम्हारे अंत के साथ होगा।''[10]

मनुष्य को सामाजिक बेइज्जती कठोर आघात पहूँचता है। शोषक वर्ग की अन्यायों पर कुठारघात करने का तीव्र आह्वान दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है।

जातिवादी शोषण और मोहभंग से ग्रस्त दलितों ने कर्मकाण्ड और अत्याचारों का विरोध करते हुए अस्मिता की खोज में दलित साहित्यकार जुडे रहे। ओमप्रकाश वाल्मीकी लिखते है -

''यह भूखा-नंगा असभ्य-सा
दिखनेवाला आदमी
लाल किले की सबसे ऊँची बुर्ज पर
लकीर खींचेगा
अपना हिसाब साफ करने के लिए।''[11]

दलित आंदोलनों का चरम लक्ष्य आत्मसम्मान की प्राप्ति है। उनका विश्वास था कि जहाँ गोली काम नहीं करती वहीं बोली ही काम करती है। इसलिए दलित कवि लिखते हैं -

''पेडों के दुःख दर्द की जडें
कविता की कुदाल से मैं खोद रहा हूँ।''[12]

दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं में भीषण एवं कठोर शक्तिवाली वाणी के माध्यम से शोषण का विरोध किया है। शिक्षा के अभाव में भी उनकी वाणी ओर नज़रिए की सभ्यता शिक्षित समाज से श्रेष्ठ और सुसम्मत है।

अपने जीवन की दुविधाओं के उत्तरदायी शोषक वर्ग की ओर निर्भयतापूर्वक काली सयाही की गोली चलाने में दलित साहित्यकारों ने कभी चूक नहीं की। उन्हें विश्वास है कि शोषकों का समाज दुर्बल है। अत्याचारों का साँप एक दिन शोषकों को डसेगा। लेकिन उपेक्षा, शोषण एवं गरीबी के शिकार होकर जीनेवाले दलितों की संजीवनी बूटी रूपी साहित्य लक्ष्य प्राप्ति के लिए सशक्त हथियार है - यही दलितों का विश्वास है।

संघर्ष की चेतना

अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित दलित साहित्य-पाखण्ड, वर्णव्यवस्था, जातिवाद को नकारते हुए वर्ण विहीन-वर्ग विहीन समता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था और आत्म सम्मान केलिए संघर्षरत है। गाँधीजी और अम्बेदकर के नेतृत्व में ऐसी एक व्यवस्था का जो पहल हुआ वह आज भी स्वप्न मात्र ही रह गया है। आज़ादी के बाद परिवर्तन की आँधियाँ नहीं आई, जिनसे अनुपयोगी पुराना कूड़ा-कचरा उडकर साफ हो जाता। पुरानी परंपराओं की जडें इस विशाल राष्ट्र

के विराट जनसमुदाय में जारी रही। नई विचारधाराएँ भी वही पनपने लगी। कालांतर में ये नई विचारधाराएँ भी जड पकड गई और फिर पुरानी परंपराओं की तरह उन्होंने भी स्थायी रूप ग्रहण कर लिया।

गाँधी का जातिवर्ग विहीन देश का सपना दुबक कर खादी आश्रमों और गाँधी स्मारक संस्थाओं में जा छिपा तो अम्बेदकर का परिश्रम दलित वर्गों के साहित्य के पन्नों में रंग भर दिया। लेकिन उस रंग में रक्त का गंध है, उसको पहचानने से शासक हिचकते है। लेकिन दलित वर्ग अपने अस्तित्व में गर्व करनेवाले है। वे जानते हैं कुछ मंत्री, थोडे से अधिकारी व प्रशासक वर्ग ही राष्ट्र नहीं होता। राष्ट्र उसके नागरिकों से मिल कर बनता है। प्रशासक ही राष्ट्र नहीं है। राष्ट्र का आकार उनसे बहुत बड़ा है।

प्रशासक वर्ग आरक्षण और औदार्यों को दलित सेवा मानते हैं। लेकिन आत्मसम्मान समदर्शी भावना के कायम दलित वर्ग इसको प्रतिबद्धता और दासता का अदृश्य रस्सी ही मानते हैं।

सोहनलाल सुमनाक्षर नामक दलित कवि ने आरक्षण की वैसाखी तोडने और आरक्षण छोडने का आह्वान किया है। असल में यह भावना आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और सामाजिक एकता का मूलमंत्र. है। इसको पहचानने में शासक और सभ्य समाज चूक करते हैं। समता और मान का निराकरण करनेवालों से प्रदत्त सुविधाएँ गुलामों को दी जानेवाली सौजन्य है।

''उनके सामने अपनी आज़ादी का
सवाल उठाया था फिर अपनी मनमर्जी चलाना
अपनी खाल उधड़वाना है।
जिसकी न्याय की अदालत में भी
सुनवाई नहीं।''[13]

ठंडे दिल से विचार करें तो पाएँगे कि यह अपरिवर्तनशीलता हमारे समाज की जड़ता और हमारे मस्तिष्क के खोखलेपन को ही प्रकट करती है। आँख बंद कर दूध पीनेवाली बिल्ली की तरह अभिनव सभ्य समाज आनंद लूटते हैं, यह शोषण है। लेकिन गुलाम को गुलामी का एहसास कराने का कार्य दलित साहित्यकार कर रहे हैं जो सामाजिक- सांस्कृतिक विकास का शुभसूचक है।

दलित साहित्यकार अम्बेदकर को अपना मसीहा मानते हैं -

''विश्व पुकार रहा है, बाबा एक बार फिर आओ,
मिलकर-जुलकर रहने का, सब को पाठ पढाओ
पीडित दलित पुकार रहे हैं, ऊपर हमें उठाओ
अत्याचार मिटाकर, सबको सदाचार सिखलाओ।''[14]

शासन की सतर्कता, आत्मसम्मान का दौर, नैतिक शिक्षा-दीक्षा, शास्त्रानुसार आचरण, समदर्शिता बोध, मौलिक अधिकार आदि सभ्य समाज की कसौटियों को सुनिश्चित करने केलिए दलित साहित्यकार अम्बेदकर के पुनरागमन की प्रार्थना करते हैं। दलितों की दृष्टि में यदि मनु आज फिर जन्म लें तो उन्हें कोई चीज़ अटपटी महसूस नहीं होगी, सिवा कुछ यंत्रों के, जो उनके ज़माने में नहीं थे।

उत्तर आधुनिक परिदृश्य में दलित साहित्य ने एक तरह से क्रांतिकारी विचार-प्रवाह की निष्पत्ति की है। पिछडे, अति पिछडे, वंचितों, उपेक्षितों, अभावों से जूझनेवाले विशाल जन-समाज की आवाज़ को समाजशास्त्र की ओर दलित साहित्यकारों ने प्रवृत्त किया है।

दलितों के व्यक्तित्व, अस्तित्व और महत्व को अनदेखा कर अधिकार लूटनेवालों की सभ्यता का पोल खोलने का प्रयास दलित साहित्य के सौन्दर्य का मर्म है। अपनी यातनाओं और वेदनाओं में भी अस्मिता की खोज और आक्रोश का होश रखनेवाले दलित मान-सम्मान और आत्मविश्वास का पक्षधर है।

कलम की शक्ति को पहचाननेवाले दलित वर्ग, सामाजिक संघर्ष के लिए उसको ही हथियार बनाते हैं। उनके सामने सभ्य समाज की मीठी खुजली की जो मानसिकता है वह एक साजिश है, शोषण का साधन है। नासमझ, नालायक और डरपोक नागरिकों से स्वार्थ साधनों का तंत्र मात्र है- मीठी खुजली। उसका नाश अवश्यम्भावी है। अतः अस्मिता और आत्मसम्मान के धरातल पर खडे होकर कलम के तलवार के सहारे विचारशील, गतिशील और विकासशील समाज की सृष्टि की श्ाक्ति जुटा रहा है दलित साहित्य।

संदर्भ

1. भारतीय दलित साहित्य-परिप्रेक्ष्य: सं. पुन्नी सिंह, राजेंद्र शर्मा, कमला प्रसाद, पृ. 325

2. लेखक की सदी-मंगलेश डबराल, पृ. 86
3. दया पवार, बलूता, पृ. 12
4. ए.आर. देशाय, Social background of Indian nationalism, p. 112
5. बिपन चन्द्रा, India struggle of Independence, p. 140
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, 'जाति' कविता, पृ. 12
7. रामचन्द्रन नायर, गाँधी साहित्य संग्रह, 1994, पृ. 58
8. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्डम् श्लोक 2-8-पृ. 633
9. setumag.com/2017/01, इंसानियत की हिफाजत, दामोदर मोरे
10. सुनो ब्राह्मण, दामोदर मोरे, पृ. 2
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृ. 10
12. setumag.com/2017/01, कविता हथौडा, दामोदर मोरे, पृ. 1
13. kavithakosh.org कविता हथौडा, दामोदर मोरे, पृ. 1
14. शंकरानन्द, भीमवदना, पृ. 8